Spinning Action into Words

द्विमासिक, फरवरी-मार्च 2006

संपादक की कलम से

आजकल हमारे देश में जो कुछ भी चल रहा है, उसके प्रसारण पर यदि एक नजर दौड़ाएं तो पाएंगे कि दिन-ब-दिन जनमुद्दों पर से मुख्यधारा के मीडिया का ध्यान हटता जा रहा है। जिस तरीके से जनसंचार के सभी माध्यम जन से दूर होते जा रहे हैं, उसका सबसे मौजूं उदाहरण आजकल छत्तीसगढ़ में देखने में आ रहा है जहां नक्सलियों के दमन की आड़ में आदिवासियों को उनके जल, जंगल और जमीन के अधिकारों से महरूम करने की तमाम साजिशें सरकारी लिहाफ में परवान चढ़ रही हैं। अब तो राज्य सरकार एक विधेयक भी लाने जा रही है जिससे गलत-सही, किसी भी किस्म के कवरेज की अनुमति पत्रकारों को नहीं रह जाएगी। यानी सूचना का सिर्फ एक ही स्रोत बचेगा सरकारी मीडिया, और उसके जनविरोधी चरित्र के बारे में ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। कुछ मानवाधिकार कर्मियों का दल छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभावित इलाकों का जायजा लेने पिछले दिनों गया हुआ था। वहां से जो सूचनाएं छन कर आई हैं, वे दिल दहला देने के लिए काफी हैं। उन्हीं सूचनाओं को हम सीधे वहीं से आपके लिए लेकर आए हैं।

इसके अलावा पूरी दुनिया के स्तर पर सबसे बड़ा संकट पानी का पैदा हो गया है और आगामी गर्मियों में आप देख पाएंगे कि ऐसा क्यों कहा जा रहा है। हमारे एक कस्बाई लेखक साथी ने इसकी सुध ली है। महिलाओं को अंधविश्वासों की आड़ में प्रताड़ित किया जाना कोई नई बात नहीं, लेकिन इसके लैंगिक पहलू पर कम ही ध्यान दिया जाता रहा है। कई दिलचस्प और मार्मिक मामलों की पड़ताल के साथ मनीषा तिवारी की एक रपट। और अंत में उत्तरांचल के जनपक्षीय पत्रकार उमेश डोभाल को हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

हमें उम्मीद है कि पहले की ही तरह आप हमें अपने इलाके के जनपक्षीय सरोकारों को उठाते रहने में लगातार मदद करते रहेंगे। आपके फीचरों और आलेखों का हमें बेसब्री से इंतजार है। अब चरखा एक नए कलेवर और दोगुनी गति से आपके बीच पहुंचने के लिए प्रतिबद्ध है। चलते-चलते... दिल्ली के जंतर-मंतर पर कई दिनों से धरने पर बैठे नर्मदा बचाओ आंदोलन के कार्यकर्ताओं और भोपाल से चालीस दिनों तक लगातार पैदल चल कर दिल्ली पहुंची गैस कांड पीड़ित अस्सी साला महिलाओं को हमारा सलाम। उनके गलते हुए पैर शायद लोकतंत्र के किसी अलमबरदार को दीख पड़ें।

इसी उम्मीद के साथ

आपका ही,

अभिषेक श्रीवास्तव

जमुई में ग्रामीण लेखकों के लिए कार्यशाला

चरखा ने 27 फरवरी से तीन मार्च 2006 तक बिहार के जमुई जिले में पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया। यह आयोजन चरखा द्वारा 2005-2006 में उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, झारखंड, छत्तीसगढ़ और बिहार में ग्रामीण लेखकों और पत्रकारों के लेखन संवर्द्धन संबंधी कार्यशालाओं की श्रृंखला की ही एक कड़ी था। अपने जनपक्षीय लेखन के माध्यम से अपने इलाके की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को उठाने वाले 20 लेखकों-पत्रकारों ने इस कार्यशाला में हिस्सा लिया। चरखा की अनुजा शुक्ला, दैनिक राष्ट्रीय सहारा की वरिष्ठ पत्रकार निवेदिता झा, उमाशंकर चतुर्वेदी, स्नेह कुमार और रमेश श्रीवास्तव ने कार्यशाला को संबोधित किया। कार्यशाला का उद्देश्य प्रतिभागियों की लेखन क्षमता को बढ़ाना था। उन्हें चार समूहों में बांटा गया था। इन समूहों के बीच विभिन्न सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर विचार-विमर्श हुआ। उन्हें फील्ड में भी ले जाया गया और इन समूहों के प्रतिभागियों ने वैकल्पिक मीडिया स्रोत के रूप में दीवार अखबार भी तैयार किए। इस कार्यशाला के आयोजन में जमुई के श्रमभारती खादीग्राम और जापान के सासाकावा फाउंडेशन ने सक्रिय सहयोग दिया।

हमकलम: ग्रामीण लेखकों-पत्रकारों का एक मंच

चरखा ने करीब 15 ग्रामीण लेखकों-पत्रकारों को एक मंच पर इकट्ठा किया है। मंच का नाम है 'हमकलम'। इन्हें चरखा द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में से ही चुना गया है। इसके पीछे प्रमुख उद्देश्य देश भर में फैले ग्रामीण लेखकों-पत्रकारों को एक मंच मुहैया कराना है जहां वे जमीनी मुद्दों पर अपने अनुभव, सूचनाएं और विचार साझा कर सकें। आने वाले दिनों में चरखा इस मंच को और मजबूत बनाने के पक्ष में है। 'हमकलम' से जुड़ने की चाह रखने वाले लेखक-पत्रकार चरखा से संपर्क कर सकते हैं।

आदिवासी अस्मिता की उखड़ती जड़ें

❐ **अभिषेक श्रीवास्तव**

ऐसा शायद ही कभी हुआ हो, कम से कम हमारे देश में कि किसी भी घटना की सही जानकारी को पाने के लिए कोई ठीक-ठाक स्रोत न बचा हो। लेकिन ऐसा हो रहा है छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभाव वाले इलाकों में और आप टीवी या अखबार के कितने भी बड़े रिपोर्टर हों, वहां जाकर मौके से सही खबरें निकालना उतनी ही टेढ़ी खीर है जितना कभी नहीं रहा। भरोसा न हो तो पिछले दिनों छत्तीसगढ़ विधानसभा में पारित एक विधेयक की जानकारी दे दें जिसमें साफ कहा गया है कि दण्डकारण्य में जाकर खबरें लाना तो दूर, वहां नक्सलियों से किसी भी किस्म का संबंध रखने पर भी वह संज्ञेय अपराध होगा। इन तमाम स्थितियों में जो खबरें उस क्षेत्र से छन कर आ रही हैं उन्हें मोटे तौर पर इस रूप में लिया जा रहा है कि आदिवासियों का एक धड़ा नक्सलियों के साथ है तो दूसरी ओर नक्सली कार्रवाइयों से तंग आकर कुछ आदिवासियों ने स्वतः स्फूर्त आंदोलन खड़ा किया है। राज्य सरकार में ही विपक्ष के नेता महेंद्र कर्मा द्वारा उछाले गए शब्द सलवा जुड़ुम ने एक ऐसे मिथक को जन्म दिया है जिसने राज्य सरकार को खुली छूट दे दी है कि वह आदिवासियों का जिस तरीके से चाहे, उन्हीं की आकांक्षाओं और अधिकारों के खिलाफ इस्तेमाल करे।

आज की तारीख में सलवा जुड़ुम यानी शांति बहाली अभियान के राज्य द्वारा पोषित इस सशस्त्र संघर्ष की भेंट 100 से ज्यादा आदिवासी चढ़ चुके हैं। माओवादियों द्वारा पिछले दिनों जारी एक विज्ञप्ति की मानें तो इनमें से 64 की तो सीधे तौर पर हत्या कर दी गई, लेकिन 31 महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार भी किया गया जिनमें से छह को बाद में मार दिया गया। इनमें दो गर्भवती थीं। इनमें 64 मृतक 37 गांवों के हैं और बलात्कृत 31 महिलाएं 17 गांवों की हैं। इन 64 में से आठ आदिवासी जनांदोलन के नेता थे, अन्य 36 उसके सदस्य थे जबकि अन्य निर्दोष आदिवासी थे जिनका आंदोलन से कोई संबंध नहीं था। जिन गांवों पर नक्सलवाद के साथ-साथ सलवा जुड़ुम की दुधारी तलवार गिरी है उनमें हरियल, कोटरापाल, पोट्टेनार, जंगला, कोंडुम, कारे पोंडुम प्रमुख हैं।

बिरांगमाड़ तक जाने वाली मुख्य सड़क पर करीब 70 गांव ऐसे हैं जिनका नक्सली आंदोलन से कोई सीधा संबंध नहीं है। इन्हीं गांवों के अधिकतर आदिवासियों को सलवा जुड़ुम में हिस्सा लेने के लिए उकसाया गया। महेंद्र कर्मा के नेतृत्व वाले समूह ने भूतपूर्व जमींदारों, लंपट तत्वों और अन्य ऐसे लोगों का एक गुट बनाया जिनकी खुली लूट नक्सली आंदोलन के चलते खटाई में पड़ गई थी। पिछले वर्ष 18 जून को करीब 3000 लोगों को इकट्ठा किया गया जिनमें अधिकतर गांवों के मुखिया और असामाजिक तत्व थे। बैठक के बाद करीब 1000 लोगों को समीपवर्ती गांव कोटरापाल पर हमला करने के लिए उकसाया गया। इस हमले को गांव वालों ने पहले ही भांप लिया था इसलिए गांव को महिलाओं और बुजुर्गों से खाली करवा दिया गया और नौजवानों ने पलट कर तेज हमला बोला। जवाबी हमला इतना तगड़ा था कि पुलिस और अर्धसैनिक बल भाग खड़े हुए। इसकी प्रतिक्रिया में पहली जुलाई को पुलिस और अर्धसैनिक बलों ने कोटरापाल गांव पर धावा बोल दिया। हमले का नेतृत्व बीजापुर के पुलिस अधीक्षक और महेंद्र कर्मा खुद कर रहे थे। आठ घरों को जला दिया गया, मवेशी लूट लिए गए और दो वृद्धों को मार दिया गया। अगला हमला इसी कड़ी में आठ जुलाई को किया गया जिसमें तीन मासूम आदिवासियों की जान गई और चार महिलाओं से बलात्कार किया गया। यह सब सलवा जुड़ुम के नाम पर शांति स्थापित करने के लिए हुआ।

लेकिन राजसत्ता के प्रतिशोध का सबसे बुरा शिकार बना हरयाल गांव। पश्चिमी बस्तर में मिर्तुल पुलिस स्टेशन से सिर्फ दो किलोमीटर की दूरी पर बसा यह गांव पिछले छह महीने से दहशत के साये में जी रहा है। जंगलों में पनाह लिए आदिवासी पलट कर वार भी कर रहे हैं। गांव के मुखिया डोरु मागू सलवा जुड़ुम के नेता थे और अब

नक्सलियों के निशाने पर हैं। उसने अफवाह फैला दी कि गांव वाले पुलिस स्टेशन पर हमला बोलने जा रहे हैं। नतीजा यह हुआ कि पुलिस और अर्धसैनिक बलों ने दस निर्दोष आदिवासियों को जान से मार दिया और घोषणा कर दी गई कि दस नक्सलियों को मार गिराया गया है। इनमें एक 12 साल का लड़का भी था। इनकी लाशों को जंगल में ही ठिकाने लगा दिया गया। यह घटना एक सितंबर की है।

सलवा जुडुम के अंतर्गत गांवों पर हमला बोलने की तकनीक कमोबेश एक जैसी ही है। अगस्त के पहले हफ्ते में मजिमेंदरी गांव पर हमला हुआ, 20 जुलाई को पोंडुम और पल्लावाया, 22 जुलाई को मुंडेर, 25 जुलाई को फलगट्टा गांव, 29 को करेबोदली गांव। इतना ही नहीं, अक्टूबर और उसके बाद हुए हमलों में सलवा जुडुम के तहत मजिमेंदरी, कोटरापाल, मंकेल, पोट्टम, पल्लुम, अल्वुर, पेड्डा जोज्जेर, चिन्ना कोरमा आदि गांवों को पूरी तरह जला डाला गया। इसका नतीजा यह हुआ है कि आज की तारीख में करीब 15000 आदिवासी अपने गांवों से भाग कर अस्थायी शिविरों में रहने पर मजबूर हैं। सलवा जुडुम में शामिल बलों, सुरक्षा बलों और अर्धसैनिक नगा बलों द्वारा बार-बार उन गांवों पर हमला बोलने की रणनीति, जहां के आदिवासी सलवा जुडुम में शामिल नहीं हो रहे हैं, ने इन्हें गांवों से भारी संख्या में पलायन करने पर मजबूर कर दिया है। सलवा जुडुम अभियान में मरने वालों की कोई भी आधिकारिक संख्या नहीं बताई जा रही है, लेकिन जनसंगठन पीयूसीएल की छत्तीसगढ़ इकाई के बिनायक सेन का कहना है कि इन मौतों की कोई खबर ही नहीं बनती इसलिए दर्ज भी नहीं किया जाता है। हालांकि, एक अन्य रिपोर्ट के मुताबिक यह संख्या अब तक 100 को पार कर चुकी है। सीपीआई (माओवादी) ने भी उनके काडरों द्वारा मारे गए आदिवासियों की संख्या अब तक सार्वजनिक नहीं कराई है। आदिवासियों के लिए सरकार द्वारा जो अस्थायी शिविर बनाए गए हैं उन्हें सरकार ने सशस्त्र प्रशिक्षण शिविरों में ही तब्दील कर डाला है। यहां आदिवासियों को नक्सल विरोधी सिद्धांतों का पाठ पढ़ाया जा रहा है और उन्हें सलवा जुडुम में शामिल किया जा रहा है। कोंटा में राजकीय हायर सेकंडरी स्कूल, गर्ल्स हाई स्कूल, जनपद मिडिल स्कूल, डोंडरा के बालिका आश्रम और बाल आश्रम पूरी तरह शिविरों में तब्दील कर दिए गए हैं जिससे इस वर्ष बोर्ड की परीक्षाएं देने वाले छात्रों का बहुत नुकसान हुआ है।

- चार मार्च 2006 तक के आंकड़ों के मुताबिक कुल 3200 आदिवासी लड़कों और लड़कियों को अकेले दंतेवाड़ा जिले से स्पेशल पुलिस अधिकारियों के ओहदे पर सलवा जुडुम में भर्ती कर लिया गया है। इन्हें सरकार की ओर से प्रति माह 1500 रुपए दिए जा रहे हैं और कई से सरकार ने यह वादा भी किया है कि इन्हें सलवा जुडुम की समाप्ति के बाद राज्य के पुलिस बल में स्थायी नौकरी पर रख लिया जाएगा। एसीएचआर की रिपोर्ट के मुताबिक बंगापाल राहत शिविर में जिन नौ स्पेशल पुलिस अधिकारियों से साक्षात्कार लिया गया उनमें से सभी 16 वर्ष से कम थे।

दोनों ओर से किस कदर आदिवासी अस्मिता कुचली जा रही है, इसका बयान आंकड़े ही कर देते हैं। 5 जून 2005 से लेकर अब 6 मार्च 2006 तक जो आंकड़े उपलब्ध हैं, उनके मुताबिक 227 लोगों की मौत हो चुकी है जिनमें 150 निर्दोष आदिवासी हैं। उधर दूसरी ओर नक्सलियों की जिद कि हर घर से एक व्यक्ति उनके आंदोलन में शामिल हो, इसने भी आदिवासियों के सामने धर्मसंकट खड़ा कर दिया है। यह एक अलग बात है कि नक्सली आंदोलन में अधिकतर काडर आदिवासी ही हैं, लेकिन उनका नेतृत्व आंध्र प्रदेश के काडर ही कर रहे हैं और पूरे आंदोलन को दिशा भी वहीं से मिल रही है। इस पूरे आंदोलन और प्रतिआंदोलन में सबसे गड़बड़ बात है वो यह कि इसके बारे में जो भी खबरें स्थानीय और सरकारी मीडिया की मार्फत आ रही हैं वे बुरी तरह एकपक्षीय हैं। 28 नवंबर से एक दिसंबर के बीच पीयूसीएल, पीयूडीआर, एपीडीआर और आईएपीएल की जो टीम दंतेवाड़ा के बीजापुर और बैरमगढ़ में सर्वेक्षण करने गई थी, उसकी तथ्यात्मक रिपोर्ट को पढ़ने से साफ होता है कि किस कदर वहां मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिया गया है और सलवा जुडुम के नाम पर आदिवासियों को उन्हीं के भाइयों के खिलाफ भड़काया जा रहा है। अगर इसे जल्द ही नहीं रोका गया तो आने वाले दिनों में इसके बहुत गंभीर परिणाम होंगे। (**चरखा**)

बोतलों में बंद जिंदगी

❒ उत्कर्ष कुमार सिन्हा

अगला विश्व युद्ध पानी के मुद्दे पर लड़ा जाएगा।' विश्व बैंक के एक अधिकारी की यह घोषणा दिन-ब-दिन एक खतरनाक संभावना बनती जा रही है। इस देश में हजारों झरने, झीलें, नदियां, ताल-तलैये और विशाल भूमिगत जल भण्डार है। औसतन 1100 मिलीमीटर बारिश हर साल होती है जो करीब 4000 अरब घनफुट पानी लाती है, लेकिन समय, मात्रा और मौसम के हिसाब से वर्षा की दर इतनी असमान है कि हर साल देश का एक हिस्सा बाढ़ तो दूसरा सूखे की चपेट में आया रहता है और कुछ हिस्सों में जल भराव की समस्या बनी रहती है। इस समस्या से देश के हर हिस्से के किसान दो-चार हो रहे हैं। गंगा-जमुनी संस्कृति वाले राज्य उत्तर प्रदेश की ही सिर्फ बात करें तो जनपद रायबरेली की महाराजगंज तहसील में पूरे साल के करीब 10 माह जल भराव से हजारों एकड़ जमीन पर कोई भी फसल पैदा नहीं की जा पा रही है। इसके कारण क्या हैं? पता चलता है कि 1924-25 में शारदा नहर प्रणाली की स्थापना की गई थी जिससे सिंचाई की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित की जा सके।

1970-78 के बीच महाराजगंज तहसील के किसानों की भूमि का अधिग्रहण करके सरकार ने शारदा सहायक नहर का निर्माण करवा दिया था। 1978 में जब नहर में पानी छोड़ा गया तो उस नहर की क्षमता 6000 क्युसेक थी पर इस क्षमता के बावजूद नहर में आज तक कभी 4000 क्यूसेक से अधिक पानी नही छोड़ा गया, बावजूद इसके कि कई जगहों से नहर कटने की खबर हमेशा मिलती रही है।

अगला विश्व युद्ध पानी के मुद्दे पर लड़ा जाएगा।' विश्व बैंक के एक अधिकारी की यह घोषणा दिन-ब-दिन एक खतरनाक संभावना बनती जा रही है। इस देश में हजारों झरने, झीलें, नदियां, ताल-तलैये और विशाल भूमिगत जल भण्डार है। औसतन 1100 मिलीमीटर बारिश हर साल होती है जो करीब 4000 अरब घनफुट पानी लाती है, लेकिन समय, मात्रा और मौसम के हिसाब से वर्षा की दर इतनी असमान है कि हर साल देश का एक हिस्सा बाढ़ तो दूसरा सूखे की चपेट में आया रहता है और कुछ हिस्सों में जल भराव की समस्या बनी रहती है। इस समस्या से देश के हर हिस्से के किसान दो-चार हो रहे हैं। गंगा-जमुनी संस्कृति वाले राज्य उत्तर प्रदेश की ही सिर्फ बात करें तो जनपद रायबरेली की महाराजगंज तहसील में पूरे साल के करीब 10 माह जल भराव से हजारों एकड़ जमीन पर कोई भी फसल पैदा नहीं की जा पा रही है। इसके कारण क्या हैं? पता चलता है कि 1924-25 में शारदा नहर प्रणाली की स्थापना की गई थी जिससे सिंचाई की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित की जा सके।

1970-78 के बीच महाराजगंज तहसील के किसानों की भूमि का अधिग्रहण करके सरकार ने शारदा सहायक नहर का निर्माण करवा दिया था। 1978 में जब नहर में पानी छोड़ा गया तो उस नहर की क्षमता 6000 क्युसेक थी पर इस क्षमता के बावजूद नहर में आज तक कभी 4000 क्यूसेक से अधिक पानी नही छोड़ा गया, बावजूद इसके कि कई जगहों से नहर कटने की खबर हमेशा मिलती रही है।

की समस्या से देश लगातार पीड़ित होता चला गया। बड़ी-बड़ी जल परियोजनाओं ने खराब नतीजे दिए। बड़ी नहरों और उनसे निकली छोटी नहरों के जाल ने जल भराव, खारेपन और लवणता को बढ़ाया जिसके कारण अब तक देश में 84 लाख हेक्टेयर भूमि बर्बाद हो चुकी है।

देश के 100 से अधिक जिलों में भूजल का स्तर चार मीटर से लेकर 30 मीटर तक नीचे चला गया है। छोटे किसान जिनके पास पंपसेट या बोरिंग की सुविधा के लिए पैसे नहीं हैं, अब खेती के लिए वर्षा पर कहीं ज्यादा निर्भर हो गए हैं। साथ ही एक बड़ी चिंता का विषय पेयजल की उपलब्धता भी है क्योंकि पूरे देश में 90 प्रतिशत से ज्यादा पेयजल स्रोत भूगर्भ जल ही है। यह पानी औद्योगिक एवं कृषि उर्वरक जनित नाइट्रेट प्रदूषण के कारण पीने लायक

नहीं रहा। इसीलिए अब बोतलबंद पानी पीने का उपदेश हमें विदेशी कंपनियां दे रही हैं। पिछले दिनों राजस्थान और गुजरात के सूखाग्रस्त हिस्सों में हुए जल दंगे इस सच्चाई की एक झलक थे। अब पानी के भंडार के रूप में जाना जाने वाला उत्तर प्रदेश भी इसी कगार पर है।

कुछ साल पहले जल संसाधन मंत्रालय ने निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिए एक दस्तावेज तैयार किया था। उस वक्त निजी क्षेत्र की कंपनियों ने इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई थी। आज की तारीख में पानी का फुटकर व्यापार उसी दस्तावेज के आधार पर कंपनियों की मुट्ठी में है। विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार इस समय पानी का विश्व व्यापार 800 अरब डॉलर का है। अनुमान है कि आने वाले दस वर्षों में यह 2000 अरब डॉलर का हो जाएगा यानी भारत के सकल घरेलू उत्पादन से चार गुनी अधिक। लिहाजा पानी अब बाजार के निशाने पर है। पानी के कारोबार में लगी एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के एक अधिकारी कहते हैं, 'पानी एक ऐसा प्रभावी उत्पाद है जो तकरीबन मुफ्त में मिलता है और इसके बिना जिंदा रहना नामुमकिन है। मुफ्त में मिले इस उत्पाद की मार्केटिंग कर बेचने में मुनाफा ही मुनाफा है।' अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया में पानी का निजीकरण हो चुका है। ठीक इसी तर्ज पर 1997 के बाद भारत और अन्य विकासशील देशों में करीब चार दर्जन परियोजनाओं को मंजूरी मिल चुकी है या मिलने वाली है और विश्व की चार बड़ी कंपनियां ही इस पूरे कारोबार को नियंत्रित कर रही हैं।

इसे अमली जामा पहनाने के लिए पिछले वर्षों के दौरान भारत में विश्व बैंक के कहे पर एक सर्वेक्षण कराया गया था। इसमें कहा गया था कि लोग पानी के लिए मौजूदा शुल्क से कई गुना ज्यादा देने के लिए तैयार हैं, बशर्ते पानी-आपूर्ति की व्यवस्था सही हो। सर्वेक्षण के मुताबिक देहरादून के लोग सुचारू रूप से अच्छा पानी मुहैया कराने वाली व्यवस्था के लिए 10 रू. प्रति घन मीटर तक पानी का कर अदा करने के लिए तैयार हैं। इसी प्रकार बड़ौदा में लोग तीन से चार गुना अधिक पानी की कीमत देने को इच्छुक हैं। विश्व बैंक और सहयोगियों के अनुसार बड़ौदा में जिन परिवारों की आमदनी 1500 रू. प्रति माह से कम है उनसे 43 रूपए कर लिया जा रहा है जबकि वे 275 रूपए वार्षिक यानी छह गुना अधिक देने के लिए तैयार हैं। इसी तरह केरल के गांवों में भी लोग चार से पांच गुना धन देने के लिए तैयार हैं; ऐसा बैंक का सर्वेक्षण कहता है। यह विडम्बना ही है कि जिस देश में लगातार भुखमरी से मौतें हो रही हों, 36 फीसदी लोगों को दो जून की रोटी के लाले हों, साठ फीसदी से अधिक की आबादी भोजन के जुगाड़ में लगी हो वहां का नागरिक बिसलेरी, कोका कोला, पारले, पेप्सी जैसी कंपनियों के मिनरल वाटर के लिए स्वेच्छा से धन देने को तैयार हैं। दरअसल, यह सर्वेक्षण देश के ऐसे मलाईदार तबके में किया गया है जिसकी जेबों में लगातार खुजली होती रहती है कि पैसा कहां और कैसे खर्च करे।

सवाल उठता है कि समाधान क्या हो। विशेषज्ञों के मुताबिक जल संसाधन को सामुदायिक नियंत्रण एवं प्रबंधन के हवाले करने में ही भलाई है। जल को जनता की साझी सम्पत्ति के रूप में स्वीकार करने और उस पर सामुदायिक स्वामित्व की बात को ही महत्व देने की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। वर्षा जल को संचित करने, पारंपरिक स्रोतों को व्यवस्थित करने और इसके प्रबंधन में जनता की भागीदारी बढ़ाए बिना काम नहीं चलेगा। सामुदायिक प्रयासों की सफल गाथाएं अलवर, भरतपुर, भावनगर, झाबुआ में पहले ही लिखी जा चुकी हैं। इन प्रयासों से न सिर्फ पानी का रख-रखाव बेहतर हुआ है बल्कि जनता को कृषि विकास, पशुधन और रोजगार सृजन का लाभ भी मिला है। यदि समय रहते महाजनों को पानी का कारोबार करने से न रोका गया तो वाकई फिर पानी के लिए अगले विश्व युद्ध से हमें कोई नहीं बचा सकता। **(चरखा)**

मौत के इंतजार में एक गांव

❒ इंद्रमणि राजा

उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले का एक छोटा सा कस्बा सिद्धौली। पानी और मजदूरी पर सरकारी भ्रष्टाचार का ऐसा मकड़जाल है जिसने स्थानीय लोगों की कमर तोड़ कर उनके हिस्से के लाभ को धनिकों की तिजोरी में बंद कर दिया है। सिद्धौली क्षेत्र के दौलतपुर खेरियां गांव के लोगों का कहना है उनके गांव के आसपास से निकलने वाली रजबहें (संपर्क नहरें) सूखी हैं और उनसे सालों से कचरा नहीं निकाला गया है। कनई नहर से लगे खखलिया, गाजीपुर, सैर रजबहा, कुवर गड़ई, डमरा गनरा नाम के रजबहे सूखे पड़े हैं। वैसे सरकारी कागजों पर हर वर्ष इन रजबहों से सिल्ट निकाल दी जाती है। ग्रामीणों अपने खेत सींचने के लिए पानी 70 रु. प्रति घंटा की दर से खरीदना पड़ता है। किसान हरिपाल सिंह यादव के आंकड़े के मुताबिक एक बीघा जमीन में लगभग चार क्विंटल गेंहू होता है जो आठ सौ रु. प्रति क्विंटल के हिसाब से 24 सौ रु. का हुआ। इसमें पूरी फसल के दौरान आठ बार पानी लगाना होता है यानी कुल जमा 24 घंटे। अब 70 रु. प्रति घंटे के हिसाब से पानी की कुल लागत बैठी 1680 रु.। बाकी बीज, रासायनिक खाद और श्रम की लागत जोड़ें तो आप समझ सकते हैं कि गरीब किसान की थाली में क्या आता होगा।

एक बुजुर्ग किसान कामता कहते हैं कि सालों पहले इन रजबहों में पानी आता था और उन्हें छह महीने में केवल 12रु. देने पड़ते थे। वह सवाल उठाते हैं कि जब पहले पानी आता था तो आज पानी क्यों नहीं आ सकता? कारण साफ है। इस पानी का इस्तेमाल बहुराष्ट्रीय कंपनियां शीतल पेय बनाने के लिए कर रही हैं तो किसान को पानी कहां से मिले। इसके नतीजे कितने भयावह हो सकते हैं, यह दौलतपुर खेरिया गांव के जवाहर की कहानी ही बयां कर देती है। अपनी जमीन साहूकारों के हाथ बेच कर वह भुखमरी के चलते मौत के इंतजार में है। इसी गांव की कमला देवी के दो लड़के गांव छोड़ बाहर जाकर मजदूरी कर रहे हैं। इधर कमला देवी जैसे-तैसे स्वयं सहायता समूह से सहायता लेकर एक छोटी दुकान से अपने खाने का जुगाड़ कर लेती हैं। (**चरखा**)

अंधविश्वास का लिंगशास्त्र

❒ मनीषा तिवारी

जस देश में सेन्सेक्स नित नई उड़ानें भर रहा है, परमाणु की राह पर समझौते हो रहे हैं और वैज्ञानिक चांद पर यान भेजने की योजना बना रहे हैं, उसी वक्त इसी देश के एक इलाके में एक व्यक्ति अपनी ही मां और नानी की इसलिए हत्या कर देता है क्योंकि उसे शक था कि वे जादू-टोना करती हैं। यह कोई काल्पनिक घटना नहीं है, बल्कि स्याह हकीकत है जो घटी है छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले में। इस जिले के राजपुर थाना क्षेत्र के अंतर्गत पड़ने वाले सिंगचौरा गांव में बीती पंद्रह जनवरी को मिलन नाम के एक बीस वर्षीय युवक ने अपनी मां मानवती और नानी पंचोबाई की डंडे से पीट-पीट कर हत्या कर दी और उसके बाद खुद जाकर थाने में आत्मसमर्पण कर दिया। पूछताछ में मिलन ने बताया कि उसे शक था कि उसकी मां और नानी टोनही हैं। टोनही यानी जादू-टोना करने वाली महिलाएं। उसका मानना था कि उसकी मां और नानी ने जादू-टोना करके उसके पिता और दो भाइयों की हत्या कर दी है और उसे भी मारने की फिराक में हैं।

सरगुजा की यह ताजातरीन घटना किसी टेलीविजन धारावाहिक की तरह है जिसकी शूटिंग अलग-अलग राज्यों के गांवों-शहरों में लगातार हो रही है और इन्हें मान्यताओं, आस्था या फिर अधिक से अधिक अंधविश्वास के नाम पर जस का तस छोड़ दिया जाता। अगली बार फिर ऐसी ही घटना होती है, लेकिन लोगों की आंखें नही खुलतीं। कुछ और बानगियां देखें- छत्तीसगढ़ के ही राजनांदगांव के अंबागढ़ चौकी थाने के तारमटोला गांव में एक वृद्धा को निर्वस्त्र कर तालाब में डुबोया गया और फिर लाठियों से पीट-पीट कर उसकी हत्या कर दी गई; पलारी के पास जुनवानी गांव में शिववती नाम की महिला को न सिर्फ बेदर्दी से पीटा गया, बल्कि उसे मैला खाने पर भी मजबूर किया गया; छत्तीसगढ़ का प्रयाग कहे जाने वाले राजिम के पास स्थित लचकेरा गांव में तीन बूढ़ी महिलाओं तीरथबाई, बिसाहिन बाई और श्यामबाई को नग्न कर सारे गांव में घुमाया गया, लेकिन लोगों का मन इससे भी नहीं भरा तो उन्हें बिजली के झटके देकर उनके मुंह में जलते हुए कोयले डाल दिए गए। जशपुर में धरमजयगढ़ के पास एक गांव में प्राकृतिक आपदाओं से परेशान गांववासियों को जब कुछ नहीं सूझा तो उन्होंने एक बैगा की बातों में आकर यह मान लिया कि यह समस्या कुछ टोनहियों के कारण है। फिर क्या था,शुरू हो गया एक अंतहीन सिलसिला महिलाओं पर प्रताड़नाओं का। नतीजा, अत्यधिक अत्याचार और बदनामी की वजह से तीजोबाई ने कुएं में कूद कर अपनी इहलीला समाप्त कर ली।

ऐसा नहीं है कि ऐसी घटनाएं सिर्फ छत्तीसगढ़ में ही हो रही हैं। राजस्थान, बिहार, झारखंड और हरियाणा के कुछ इलाकों में इसी तरह से ठीक-ठाक महिलाओं को कभी टोनही, कभी डायन तो कहीं चुड़ैल कह कर अक्सर प्रताड़ित किया जाता है और ऐसी घटनाएं सिर्फ सनसनी की खबरें बन कर ही रह जाती हैं। इस बारे में कभी विचार नहीं किया जाता कि डायन, चुड़ैल या टोनही सिर्फ औरतें ही क्यों होती हैं, पुरुष क्यों नहीं। आज जब राजनीति में सोनिया और खेल में सानिया धूम मचाए हुए हैं, ऐसे में इस कड़वी हकीकत को स्वीकार करना थोड़ा मुश्किल लगता है कि इसी देश के कुछ इलाकों में शिववती, श्यामबाई और तीजोबाई भी हैं जिनका अपराध सिर्फ इतना है कि वे उन लोगों के बीच जी रही हैं जो इक्कीसवीं सदी में रहते हुए खुद अठारहवीं सदी में जी रहे हैं। सवाल उठता है कि क्या इन महिलाओं को प्रताड़ित किए जाने की वजह सिर्फ अंधविश्वास है? कुछ मामलों में तो इसे सही कहा जा सकता है, लेकिन अनेक मामलों में अंधविश्वास सिर्फ एक बहाना है। असली वजह कुछ और होती है। जादू-टोने के प्रति लोगों में बैठे डर और टोनही को लेकर सालों से चली आ रही दहशत का लाभ अपने व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति के लिए उठाया जाता है। कभी उद्देश्य किसी असहाय महिला की जमीन हड़पना होता है तो कभी उसके साथ दुराचार करना। बस करना सिर्फ इतना होता है कि उस महिला को सुनियोजित तरीके से टोनही के रूप में प्रचारित कर दिया जाए और फिर जब वह समाज में अलग-थलग पड़ जाए तो अपने कुत्सित इरादों को पूरा कर लिया जाए।

यदि ऐसा नहीं होता तो कभी क्यों नहीं किसी पुरुष को जिन्न या भूत कह कर प्रताड़ित किया गया? दरअसल, जादू-टोने से जुड़े से मामलों में सबसे ज्यादा हमारे समाज की पुरुषवादी मानसिकता काम करती है, जो दरअसल इनके बहाने अपनी कुण्ठाओं को बाहर निकलने का रास्ता देती है। इस समस्या की गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय महिला आयोग एक ऐसे विधेयक का मसविदा तैयार करने में जुटा हुआ है जिसे कानून बना कर केंद्र सरकार को लागू करना है। छत्तीसगढ़ विधानसभा में तो पिछले साल ही इस मसले पर एक विधेयक पारित किया जा चुका है, इसके बावजूद अगर घटनाएं थमने का नाम नहीं ले रहीं तो फिर मामला उतना आसान नहीं जान पड़ता जितना दिखता है। इस विधेयक में टोनही के नाम पर होने वाले अत्याचारों को गैर-जमानती अपराध माना गया है। यहां तक कि कोई व्यक्ति यदि किसी महिला की टोनही के रूप में पहचान भी करेगा तो उसे तीन साल तक की सजा भुगतनी पड़ेगी। शारीरिक या मानसिक उत्पीड़न के मामले में पांच साल तक की सजा भी संभव है। सबसे बड़ी बात ये कि यदि कोई महिला खुद टोनही होने का दावा करती है तो उसे एक साल तक की सजा का प्रावधान है।

इतने कड़े कानूनों के बावजूद प्रताड़ना जारी है और निर्दोष महिलाएं पुरुषवादी समाज के अंधविश्वास की चक्की में घुन की तरह पिस रही हैं। चूंकि इस अपराध का एक विशेष लिंग से संबंध है, इसलिए कानून बनाने भर से इसका

उन्मूलन संभव नहीं। जरूरी है कि इस दिशा में महिलाओं को खुद जागरूक किया जाए। रायपुर में अंध श्रद्धा निर्मूलन समिति नाम के एक स्वयंसेवी संगठन ने इस दिशा में पहल की है। इसके सदस्य गांव-गांव में रात भर घूम कर महिलाओं को बताते हैं कि टोनही एक बेबुनियाद बात है और यह सब महिलाओं को दबाने की एक साजिश है। खासकर अमावस्या या ऐसे ही दिनों में जब अंधविश्वास अपने चरम पर होता है, संगठन के लोग रात में बाहर निकल कर जागरूकता फैलाते हैं। ये तरीका ही इकलौता है जिससे हमारे समाज में लिंग आधारित अपराधों में कमी आएगी, बाकी का काम कानून तो करते ही रहेंगे। सरकार को ऐसे स्वयंसेवी प्रयासों को बढ़ावा देना होगा जिससे ग्रामीण इलाकों की महिलाओं के दिलो-दिमाग में बैठा यह डर पूरी तरह समाप्त हो जाए कि कहीं अगली बार उन्हें कोई डायन न ठहरा दे। (**चरखा**)

राजनीति के टोटके

❒ **कुंदन गोप**

हजारीबाग जिला मुख्यालय से 55 किलोमीटर दूर और बरकाकाना जंक्शन से एक किलोमीटर की दूरी पर है तेलियातू गांव। इस क्षेत्र की सबसे अधिक आबादी वाला गांव है यह। यहां महतो जाति की बहुलता है। इसके बाद मुंडा, करमाली, हरिजन, ठाकुर आदि हैं। वर्षों से यहां तमाम जातियां भाईचारे के बंधन में रहती आई हैं और पिछले जमाने में टोना-टोटका का जोर होने के बावजूद यहां किसी महिला को डायन कह कर प्रताड़ित नहीं किया गया, लेकिन पिछले दिनों की एक अभूतपूर्व घटना ने आसपास के गांवों में एक ऐसी दहशत पैदा कर दी है जिसकी छाप को लोगों के दिमाग से मिटने में काफी वक्त लगेगा।

इसी वर्ष की शुरुआत में 30 जनवरी को इसी गांव के टीभू मुंडा की पत्नी सोमरई देवी को महतो जाति के कुछ लोग घर से निकाल कर अपने ठिकाने पर ले गए, उसकी बर्बरता से पिटाई की, कमरे में बंद कर दिया और बिजली का झटका देकर यह कबूल करवाने का प्रयास किया कि उसने ही उनकी लड़की पर जादू-टोना किया है। घटना है कि उक्त 15 वर्षीय लड़की कुन्ती कुमारी की मौत 29 जनवरी को प्रेम प्रसंग के चलते हुई। 30 तारीख को ही उसका दाह संस्कार किया गया था। वह समय महतो की बेटी थी। इसके तुरंत बाद सोमरई देवी को प्रताड़ित किया गया। अगले ही दिन 31 जनवरी को पंचायत बुला कर यह तय किया गया कि ओझा के जरिए फिर से जांच करवाई जाए कि लड़की पर सोमरई देवी ने जादू किया था या नहीं।

31 जनवरी को भी सोमरई देवी का इलाज नहीं करवाया गया जिससे उसकी हालत खराब होने लगी। उसे परिजनों ने उसे घुटूआ के सीसीएल अस्पताल में भर्ती करवाया गया जहां से उसे रांची के राजेंद्र मेडिकल कॉलेज में रेफर कर दिया गया। घटना की निंदा वहां नौजवानों की संस्था इंकलाबी नौजवान सभा ने की और यह खबर जब एक दैनिक में प्रकाशित हुई तब पुलिस प्रशासन की नींद खुली। चूंकि उस क्षेत्र में महतो जाति का वर्चस्व है इसलिए वे टीभू मुंडा पर दबाव बना रहे हैं कि घटना को वहीं दबा दिया जाए और उसे समझौते के लिए बाध्य किया जा रहा है।

इधर इस घटना को दबाने के लिए राजनीतिक पार्टियां भी अचानक सक्रिय हो उठीं। सवाल उठता है कि जातिवादी राजनीति के चलते जब कानून बनाने वाले ही ऐसे अंधविश्वासों और महिला उत्पीड़न को रफा-दफा करने में में जुटे हों, तो फिर उनके द्वारा बनाए कानूनों से क्या उम्मीद की जा सकती है? (**चरखा**)